शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बालचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

जुलाई : १९६२ ☆ वर्ष अठारहवाँ, अषाढ़, वीर नि०सं० २४८८ ☆ अंक : ३

पवित्र परमपद की महिमा

चक्रवर्ती की समस्त संपत्ति से भी जिसका मात्र एक समय विशेष मूल्यवान है, ऐसा यह मनुष्य देह और परमार्थ के अनुकूल ऐसा योग संप्राप्त होने पर भी जिसने जन्म-मरण से रहित ऐसे परमपद का ध्यान नहीं रखा तो इस मनुष्यत्व का अधिष्ठित ऐसे आत्मा को अनंत बार धिक्कार है।

जिनने प्रमाद का जय किया
उन्होंने परमपद का जय किया।

(श्रीमद् राजचन्द्र)

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

[२०६]

एक अंक
चार आना

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री कुन्दकुन्द-कहान प्रकाशन मन्दिर
व्य० श्री दि० जैन मुमुक्षु मंडल-बम्बई के द्वारा

— नया प्रकाशन —

श्री समयसारजी-परम अध्यात्मशास्त्र

भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत सर्वोत्तम अध्यात्मशास्त्र, श्री अमृतचंद्राचार्य कृत संस्कृत टीका सहित हिन्दी अनुवाद। प्रकाशक श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, संचालित श्री कुन्दकुन्द-कहान प्रकाशन मंदिर ठि० १७३-७५, मुम्बादेवी रोड, बम्बई-२।

यह अद्वितीय जगतचक्षु समान आध्यात्मिक ग्रन्थाधिराज है, परिभाषण पद्धति से जो सूत्र रचना हो, वह सर्वोत्तम मानी जाती है। जैसी मूल सूत्रों की सर्वोत्तम रचना श्री कुन्दकुन्दाचार्य की है, ठीक वैसी ही आत्मख्याति नामक टीका सर्वोत्तम है, वीतरागता, और स्वतंत्रता ग्रहण करने की रुचि से पढ़ने से उसका रसास्वाद आता है।

जिसमें ज्ञानी-अज्ञानी जीवों का स्वरूप, भेदविज्ञान, नवतत्त्वों का रहस्य खोलनेवाले सात अधिकार, कर्ताकर्म, सर्वविशुद्धज्ञान, अनेकान्त, ४७ शक्ति, मोक्षमार्ग का स्वरूप, साध्यसाधक भाव का स्वरूप आदि का सुस्पष्ट वर्णन है। उस पर सातिशय प्रचंड निर्मल तत्त्वज्ञान के धारक अजोड़ महर्षि श्री अमृतचन्द्राचार्य की सर्वोत्तम सं० टीका है। अत्यंत अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) जीवों को भी जिसमें समझाया गया है। हिन्दी अनुवाद, दूसरी आवृत्ति, इस ग्रंथ में गाथाएँ लाल स्याही से छपी हैं, कुछ गाथाएँ सुनहरी कलर में हैं। बढ़िया कागज पर सुन्दर ढंग से छपने पर भी मूल्य लागत से भी बहुत कम रखा है, सभी जिज्ञासु यथार्थतया लाभ लेवें, ऐसी भावनावश इस ग्रन्थाधिराज का मूल्य मात्र ५) रुपया रखा है। पोस्टेजादि अलग। पृष्ठ संख्या ६४१ बड़े आकार।

मंगाने का पता—

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

पो० सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

[नोट—यह शास्त्र बम्बई, दिल्ली, कलकत्ता, भोपाल, उज्जैन, विदिशा, इन्दौर, जयपुर, गुना आदि गाँवों में दि० जैन मुमुक्षु मंडल द्वारा प्राप्त हो सकेंगे।]

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बालचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

जुलाई : १९६२ ☆ वर्ष अठारहवाँ, अषाढ़, वीर नि०सं० २४८८ ☆ अंक : ३

ज्ञान गोष्ठी

[नव तत्त्व संबंधी प्रश्नों के उत्तर]

प्रश्न १ – अपने चैतन्यस्वभाव में यदि पूर्णतः स्थिर हो जायें तो अपने पास कौन-सा तत्त्व आता है ?

उत्तर – मोक्ष तत्त्व आता है।

प्रश्न २ – अपन यदि भगवान की भक्ति-पूजा करें, और गुरु के प्रति तथा धर्मी-धर्मात्मा जीवों के प्रति विनय बहुमान करें तो अपने पास कौन-सा तत्त्व आता है।

उत्तर – पुण्य तत्त्व आता है।

प्रश्न ३ – कोई मूढ़ जीव बहुत जीवों को मार डाले-नाश कर दे, तो उसके पास कौन-सा तत्त्व आता है ?

उत्तर – पाप तत्त्व आता है।

प्रश्न ४ – अपने पास ऐसा कौन-सा तत्त्व है, जो सर्वदा (अनादि-अनंत) अपने ही पास रहता है ?

उत्तर – जीव तत्त्व।

प्रश्न ५ – अपने पास यदि मोक्ष तत्त्व आवे तो अन्य कौन-कौन तत्त्व छूट जाते हैं ?

उत्तर – अजीव (कर्म का संयोग) पाप, पुण्य, आस्रव, बन्ध, संवर और निर्जरा, ये तत्त्व छूट जाते हैं।

प्रश्न ६ – एक जीव के साथ अधिक से अधिक कितने तत्त्व होते हैं ? और वे कौन-कौन ?

उत्तर – एक जीव के पास एक साथ अधिक से अधिक आठ तत्त्व होते हैं।—जीव, अजीव (कर्म का संयोग) पाप, पुण्य, आस्रव, बन्ध, संवर और निर्जरा।

प्रश्न ७ – नौ में से कम से कम तत्त्व किस जीव के पास होते हैं ? और वे कौन-कौन ?

उत्तर – सिद्ध भगवान के पास सिर्फ दो ही तत्त्व होते हैं। जीव और मोक्ष।

प्रश्न ८ – जब सम्यग्दर्शन होता है, तब अपने पास कौन-कौन से नए तत्त्व आते हैं ?

उत्तर – अपने को जब सम्यग्दर्शन होता है, तब संवर और निर्जरा तत्त्व नए आते हैं और बाद में थोड़े समय में मोक्ष तत्त्व जरूर आवे।

प्रश्न ९ – सम्यग्दर्शन होते समय अपने पास से कौन-कौन तत्त्वों का भागना शुरु होता है ?

उत्तर – पाप, आस्रव और बन्ध तत्त्व जाने शुरु हो जाते हैं।

प्रश्न १०– सिद्ध भगवान के पास अधिक तत्त्व हैं कि तुम्हारे पास ?

उत्तर – हमारे पास।

प्रश्न ११ – जहाँ संवर तत्त्व हो, वहाँ दूसरे कौन-कौन तत्त्व हो सकते हैं ?

उत्तर – जीव, अजीव (कर्मसंयोग) पाप, पुण्य, आस्रव, बन्ध और निर्जरा ये सात तत्त्व हो सकते हैं।

प्रश्न १२ – जहाँ संवर तत्त्व न हो, वहाँ दूसरे कौन-कौन तत्त्व हो सकते हैं ?

उत्तर – जीव, अजीव (कर्म का सम्बन्ध) पाप, पुण्य, आस्रव, बन्ध और मोक्ष तत्त्व हो सकते हैं।

प्रश्न १३ – संवर तत्त्व की पूर्णता कब ?

उत्तर – चौदहवें गुणस्थान के अन्तिम समय पर।

प्रश्न १४ – निर्जरा तत्त्व की पूर्णता कब ?

उत्तर – चौदहवें गुणस्थान के अंतिम समय पर।

प्रश्न १५ – सिद्ध भगवन्तों के पास कितने तत्त्व होते हैं ?

उत्तर – दो।

प्रश्न १६ – मोक्षमार्ग अर्थात् कौन-कौन तत्त्व ?

उत्तर – संवर और निर्जरा।

प्रश्न १७ – दुनिया में (जगत् में) संवर तत्त्वोंवाले जीव अधिक या मोक्षतत्त्ववाले अधिक ?

उत्तर – मोक्षतत्त्ववाले।

प्रश्न १८ – जगत् में मोक्षतत्त्ववाले जीव अधिक या बन्धतत्त्ववाले।

उत्तर – बन्धतत्त्ववाले।

प्रश्न १९ – जगत् में जीव तत्त्व अधिक या अजीव तत्त्व ?

उत्तर – अजीव तत्त्व।

प्रश्न २० – तुम्हारे पास इस समय कौन-कौन तत्त्व हैं ?

उत्तर – जीव, अजीव (कर्म का संयोग) पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध (और जो उत्तर देनेवाले साधक जीव हों तो संवर और निर्जरा ये दो तत्त्व अधिक समझें) यहाँ अध्यात्म में सम्यक्त्वपूर्वक की निर्जरा को ही निर्जरा मानने में आता है।

प्रश्न २१ – नव तत्त्वों में से कौन-कौन तत्त्व अच्छे (हितरूप) हैं ?

उत्तर – जीव, संवर, निर्जरा और मोक्ष।

प्रश्न २२ – मिथ्यादृष्टि जीव किन तत्त्वों का राजा है ?

उत्तर – पाप, आस्रव और बन्ध।

प्रश्न २३ – नीचे के वाक्यों को पढ़ते हुए किन तत्त्वों की याद आती है ? (उनके उत्तर कौंस में (Bracket) बता दिये हैं –)

१. जीव नरक में अत्यन्त यातना भोगता है (पापतत्त्व)

२. स्वर्ग में भी सुख सचमुच नहीं है। (पुण्यतत्त्व)

३. सिद्ध भगवन्त सम्पूर्ण सुखी हैं। (मोक्षतत्त्व)

४. चैतन्य के ध्यान से कर्म का नाश हो जाता है। (निर्जरातत्त्व)

५. ज्ञान मेरा स्वभाव है। (जीवतत्त्व)

६. मिथ्यादृष्टि को बहुत आवक है, सम्यग्दृष्टि को बहुत कम आवक है काहे की ? – कर्म की (आस्रवतत्त्व)

७. सम्यग्दृष्टि को आय से व्यय अधिक है, काहे की ? – कर्म की (निर्जरातत्त्व)

८. मिथ्यादृष्टि के व्यय से आय अधिक है, काहे की ? – कर्म की (आस्रवतत्त्व)

९. सम्यग्दर्शन बगैर कर्मबन्ध कभी अटकते-रुकते नहीं। (संवरतत्त्व)

१०. जैसे पाप से कर्म बँधते हैं वैसे पुण्य से भी कर्म बँधते हैं। (बन्धतत्त्व)

११. देह में ज्ञान नहीं। (अजीवतत्त्व)

हे जिन मेरी ऐसी बुद्धि कीजे

भगवान जिनेन्द्र वीतरागदेव के प्रति जिनके परम बहुमान जागृत हुआ है, वीतरागता के जो उपासक हैं। आत्मपरिणाम में समतारस के सिंचन से राग-द्वेष के दावानल को जो बुझाना चाहते हैं, ऐसे भक्त जिन प्रार्थना के बहान वीतरागता की भावना भाते हैं।

हे जिन मेरी ऐसी बुद्धि कीजे... हे जिन
रागद्वेष दावानल से बच, समता रस में भीजे
.....हे जिन मेरी ऐसी बुद्धि कीजे।

हे भगवन्! मेरी बुद्धि ऐसी अंतर्मुख हो कि राग-द्वेषरूपी दावानल से रक्षा होकर मेरी आत्मा समता रस में तरबतर हो जाय..... चैतन्य की परम शांति की वेदना में (संवेदन में) बुद्धि ऐसी अनुभूति करे कि कहीं भी राग-द्वेष को अवकाश (प्रवेश) ही न रहे।

फिर वीतरागता के लिए भेदज्ञान की तीव्र भावना से उपासक प्रार्थना करता है कि पर में त्याग अपनपन, जिनमें लाग न कबहुं छीजे... हे जिन! मेरी ऐसी बुद्धि कीजे

हे जिनेश! अंतर्मुख होते मेरी परिणति (दशा) ऐसी हो कि पर में (अन्य में) अपनापन त्यागकर निजात्म में ही लगे रहें और उसी में स्थिर बने रहें। और कभी उससे अलग हों ही नहीं।

अंतर्मुख होते मेरी परिणति (स्थिति) कैसी हो? कि—

कर्म कर्म फल मांहि न राचे, ज्ञान सुधा रस पीजे
..... हे जिन मेरी ऐसी बुद्धि कीजे॥

सर्वदा ज्ञानचेतना की ही भावना भाते हुए स्तुतिकार कहते हैं। हे जिन कर्म में अथवा कर्मफल में मेरी बुद्धि किंचित् भी लिप्त न होवे। और चैतन्य में लीनता द्वारा निरंतर ज्ञान सुधारस को ही पीता रहे। ऐसी मेरी बुद्धि करें (कीजिए)

हे भगवन्! मेरे साध्य ऐसी जो वीतरागता, सो आपको तो पूर्ण प्रगट है। इसलिए आप तो मेरे लिए ध्ययेरूप हैं। इसप्रकार वर्णन करते हुए कविवर दौलतरामजी कहते हैं कि—

मुझ कारजके तुम कारण वर अरज 'दौल' की लीजे
....हे जिन! मेरी ऐसी बुद्धि कीजे।

भेदज्ञानपूर्वक निजात्म में लीनता, वीतरागता और ज्ञानचेतना ऐसा जो मेरा कर्तव्य, उसके उत्तम कारणपणे हे जिन! आप हैं.... क्योंकि आपको ध्येय बनाते हुए मेरे भेदज्ञान आदि कार्य की सिद्धि होती है। इसलिए हे भगवान्! मेरी इसप्रकार की निर्मल बुद्धि करें।

सर्वज्ञदेवकथित छहों द्रव्यों की स्वतंत्रतापूर्वक

: सामान्य गुण :

(१) अस्तित्वगुण :

कर्ता जगत का मानता जो 'कर्म या भगवान को',
वह भूलता है लोक में अस्तित्वगुण के ज्ञान को;
उत्पाद व्यययुत वस्तु है फिर भी सदा ध्रुवता धरे,
अस्तित्वगुण के योग से कोई नहीं जग में मरे ॥१॥

(२) वस्तुत्वगुण :

वस्तुत्वगुण के योग से हो द्रव्य में स्व स्वक्रिया,
स्वाधीन गुण-पर्याय का ही पान द्रव्यों ने किया;
सामान्य और विशेषता से कर रहे निज काम को,
यों मानकर वस्तुत्व को पाओ विमल शिवधाम को ॥२॥

(३) द्रव्यत्वगुण :

द्रव्यत्वगुण इस वस्तु को जग में पलटता है सदा,
लेकिन कभी भी द्रव्य तो तजता न लक्षण सम्पदा;

स्व-द्रव्य में मोक्षार्थी हो स्वाधीन सुख लो सर्वदा,
हो नाश जिससे आजतक की दुःखदायी भवकथा ॥३॥

(४) प्रमेयत्वगुण :

सब द्रव्य-गुण प्रमेय से बनते विषय हैं ज्ञान के,
रुकता न सम्यग्ज्ञान पर से जानियो यों ध्यान से;
आत्मा अरूपी ज्ञेय निज यह ज्ञान उसको जानता,
है स्व-पर सत्ता विश्व में सुदृष्टि उनको जानता ॥४॥

(५) अगुरुलघुत्वगुण :

यह गुण अगुरुलघु भी सदा रखता महत्ता है महा,
गुण-द्रव्य को पररूप यह होने न देता है अहा!
निज गुण-पर्यय सर्व ही रहते सतत निजभाव में,
कर्ता न हर्ता अन्य कोई यों लखो स्व-स्वभाव में ॥५॥

(६) प्रदेशत्वगुण :

प्रदेशत्वगुण की शक्ति से आकार द्रव्यों को धरे,
निजक्षेत्र में व्यापक रहे आकार भी स्वाधीन है;
आकार हैं सब के अलग, हो लीन अपने ज्ञान में,
जानों इन्हें सामान्य गुण रक्खो सदा श्रद्धान में ॥६॥

(ब्र०गुलाबचंद जैन)

शुद्धनय की महिमा

अंतर्मुख होकर जो शुद्धनय का अवलंबन करते हैं, उन्हें ही मुक्ति प्राप्त होती है। और जो शुद्धनय का त्याग करते हैं, वे अवश्य बंधन को प्राप्त होते हैं। अतः मोक्षार्थियों को शुद्धनय का अवलंबन करना चाहिये—ऐसा संतों का उपदेश है; और शुद्धनय का अवलंबन करना ही सर्व शास्त्रों का निचोड़ है।

ज्ञानियों को बंधन प्राप्त नहीं होता—यह शुद्धनय की महिमा है। ज्ञानी ने शुद्धनय का आश्रय लिया है, इससे चैतन्य के सिवाय अन्य किसी वस्तु में—पदार्थ में—उसे रुचि नहीं। चैतन्य की साधना में ही उसका चित्त लगा हुआ है। अहो! शुद्धनय के अनुभव की अपार महिमा है। जहाँ शुद्धनय द्वारा अंतर में परमात्मा का मिलन-दर्शन होता है, आत्मा स्वयं अबंध भाव से परिणमित होता है।—अर्थात् वह बंध से मुक्त हुआ, उसका बंधन नष्ट हुआ। राग में एकत्वबुद्धिरूप मिथ्यात्व, वही महाबन्ध का कारण है। जहाँ अनुभव के अंकुर फूटे कि वहाँ मिथ्यात्व के बंधन टूटे। ऐसे अनुभव के बिना वन का वनचर बनकर अनंत जीव संसार में ठोकरें खाता। फिर अज्ञानी जीव वन में जाकर रहे तो भी वन के वनचरों में और उसमें कोई अंतर नहीं है, सम्यक् आत्मभाव के बिना संसार भ्रमण नहीं मिटता और बंधन छूटते नहीं।

शुद्धनय ऐसा उद्धत ज्ञानयुक्त है कि वह कसी से दबता नहीं; उद्धत ज्ञान कहा, यह कोई दोषयुक्त नहीं परन्तु ज्ञान की स्वाधीनतारूप है! शुद्धनय द्वारा ज्ञान ऐसा स्वाधीन हुआ कि वह किसी परभाव में दबता नहीं, समस्त परभावों से वह मुक्त रहता है। ऐसा ज्ञान चौथे गुणस्थान में भी सम्यक्दृष्टि को होता है। पहले अज्ञानदशा में ज्ञान दबा हुआ था, अज्ञात था, रागादि परभावों से दब जाता था। रागों से-विकारों से-मुक्त नहीं रहता था। परंतु एकत्वबुद्धि से राग में-विकारों में-दब जाता था। जहाँ ज्ञान ने शुद्धनय का अवलंबन किया-आश्रय लिया-वहाँ ऐसा उद्धत-स्वतंत्र-स्वाधीन हो गया कि वह अब किसी से दबता नहीं, कर्मों का उदय उसे (ज्ञान को) पीछे पटक दे, ऐसी उसकी शक्ति नहीं। १२ अंगों का सार और १४ पूर्व के रहस्य उस ज्ञान में आ गया है। जैन शासन का मर्म उसने जान लिया है। वह ज्ञान का अंतर्मुख वहन है, अंतर्मुख स्वभाव की तरफ उसका परिणमन है, चैतन्य भगवान का सहारा लेकर वह ज्ञान स्वतंत्र हो गया है; कोई राग की,

कोई विकार की, कोई कर्म की, कोई प्रतिकूलता की ऐसी कोई शक्ति नहीं कि वह ज्ञान को दबावे, छिपावे। किसी से वह ज्ञान छिपता-दबता नहीं। देखो, यह शुद्धनय की ताकत!! ऐसा शुद्धनय जहाँ प्रगट हुआ, वहाँ सारे बंधन दूर भागे। इसप्रकार शुद्धनय के अवलंबन में वर्तते ज्ञानी को बंधन नहीं होता। सभी शास्त्रों का सारांश क्या है? कि शुद्धनय का अवलंबन करना। जिनशासन का मर्म क्या? कि शुद्धनय का अवलंबन करना। मोक्ष का मार्ग कौन सा?—कि शुद्धनय का अवलंबन करना। शुद्धनय से अंतर्मुख होकर कारणपरमात्मा को अपना कारण बनाया है और उस कारण के अवलंबन से शुद्ध कार्य होने लगा। ऐसा शुद्धनय का अवलंबन ही एकमात्र सत्कार्य है। शुद्धनय से हटकर अशुद्धनय का (व्यवहार का) अवलंबन लेते रागादि की उत्पत्ति होती है, वह असत् कार्य है, और वह बंध का कारण है। अत: मुमुक्षुओं को शुद्धनय का आश्रय लेने जैसा है और अशुद्धनय का आश्रय त्यागने जैसा है।

जिसको जिसकी धुन लगे, उसमें वे एकाग्र हों और अन्यों को भूल जायें। जिसको चैतन्य मूर्ति आत्मा की धुन लग गई है, वह पुण्य पाप में कहीं भी एकाग्र नहीं होता। जैसे खेल की धुन में लगा हुआ बालक खाना भी भूल जाता है; उसीप्रकार चैतन्य की धुन में लगे ज्ञानी को बाह्य विषयों का और विकारों का स्वाद उड़ जाता है, जिस ज्ञान ने अंतर्मुख होकर चैतन्य के आनन्द का वेदन किया—स्वादन किया—उस ज्ञान के महिमा की क्या बात!! भले ही उसे अवधिज्ञान न हो, मन:पर्ययज्ञान न हो, १२ अंग और १४ पूर्व शास्त्र का ज्ञान न हो, परंतु जिसने शुद्धात्मा को अनुभव में लिया उसने श्रुतज्ञान द्वारा सारे जिनशासन को समझ लिया, वह श्रुतज्ञान अंतर्मुख एकाग्रता से केवलज्ञान की साधना करेगा। ऐसे श्रुतज्ञान को शुद्धनय कहते हैं। चौथे गुणस्थान से उस शुद्धनय का आरंभ होता है, वह शुद्धनय केवलज्ञान की किस्म का-प्रकार का है। शुद्धनय आश्रय बढ़ते-बढ़ते केवलज्ञान होता है।

शुद्धात्मा को अवलंबन करनेवाला जो शुद्धनय, उससे जो च्युत है, अर्थात् जो शुद्धात्मा का अवलंबन नहीं करता और पुण्य के अवलंबन को लाभ मानकर वहीं अटक गया। वह जीव फिर-फिर नये कर्मों को बाँधता है और जो शुद्धनय का अवलंबन नहीं छोड़ता, वह कर्मबंधन का छेदन करके मुक्ति प्राप्त करता है।

* आस्रव किनको होता है? उन्हें, जो शुद्धनय का अवलंबन नहीं करते।
* आस्रव का अभाव किन्हें होता है? उन्हें, जो शुद्धनय का अवलम्बन करते हैं।

अत: आचार्यदेव कहते हैं कि—सब कथन का सारांश यह है कि शुद्धनय त्याज्य नहीं है। शुद्धनय का आश्रय छोड़ने से बंधन होता है और शुद्धनय का आश्रय करने से-लेने से-मुक्ति प्राप्त होती है, अत: शुद्धनय का आश्रय करना यही सारे शास्त्रों का सार है। पवित्र सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा को अंतर्दृष्टि में सर्वदा शुद्धनय का अवलंबन वर्तता है, और ज्ञान किरणों को अंतर में समेटकर-एकाग्र होकर-चैतन्य ही में उपयोग और एकाग्रता करके अल्पसमय में वह केवलज्ञान को प्रकट करता है। अत: जो सम्यग्दृष्टि हैं, अथवा जो सम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहते हैं, ऐसे पवित्र जीवों को शुद्धनय द्वारा शुद्धात्मा का ही अवलंबन करना चाहिए—ऐसा श्रीगुरुओं का उपदेश है।

आस्रव अर्थात् मलिन भाव, यही बंध का कारण है। जिनके मलिन भाव नहीं, उनके बंधन नहीं। अंतर का जो परमात्मस्वभाव, उसका अवलंबन करनेवाला शुद्धनय, वह तो निर्मल है। ऐसे शुद्धनय का अवलंबन करनेवाले ज्ञानी को बंधन प्राप्त नहीं होता। जो जीव शुद्धनय से च्युत हैं, जो शुद्ध आत्मा को जानते नहीं, वे राग ही में लीन हैं, ऐसे अज्ञानियों को ही बंधन होता है। शुद्धनय में तो शुद्ध परिणमन है, वह शुद्धता बंधन की कारण कैसे बन सकती है। शुद्ध आत्मा का अवलंबन करनेवाला जो शुद्धनय, सचमुच उसी को नय कहा है। जिन्हें शुद्धनय नहीं; वे जीव नय से भ्रष्ट हैं। उनका एक भी नय सत्य नहीं होता। उन्हें रागादि में एकतारूप मिथ्या अभिप्राय है, उस मिथ्या अभिप्राय के लिये, पुराने कर्मों में युक्त होकर नये कर्मों को बाँधते हैं। इसप्रकार मिथ्या अभिप्राय ही कर्मबंधन का मूल कारण है। ज्ञानी ने तो शुद्धनय के अवलंबन द्वारा शुद्धता प्रकट करके पूर्व कर्म का साथ तोड़ दिया है, इससे उसे पुराने कर्म नये कर्म के बंधन का कारण नहीं बनता, बंध के कारण हुए बगैर ही वह छूट जाता है। इसप्रकार ज्ञानी को बंधन नहीं किंतु निर्जरा ही है।

शास्त्र का साराँश एक वाक्य में यह है कि शुद्धनय का आश्रय करना; अर्थात् पूर्णानन्द स्वभाव के सम्मुख होकर शुद्धनयरूप परिणमना। जिनका परिणमन शुद्धात्मा की तरफ झुका हुआ है, उनके कर्मचक्र की परम्परा टूट जाती है। और जिसका परिणमन राग में विकार में-चक्र की एकतारूप है, उसे कर्मचक्र अबाध्यरूप से बना रहता है। दो पहलू हैं—एक ओर ज्ञानानंदस्वभाव और दूसरी ओर रागादि परभाव। स्वभाव की तरफ झुककर एकाग्र हुआ, वह मुक्त होता है और दूसरी ओर विकारों की तरफ झुका—एकाग्र हुआ, वह बँधता है।

जंगल में रहनेवाले संतों ने चैतन्यस्वभाव के अनुभव में झूमते-झूमते अलौकिक कार्य किये हैं... परमात्मा इनकी दृष्टि में तिरता है; रागादि परभावों के साथ की संधि-एकता तोड़कर

अंतर में परम-आत्मा के साथ संबंध बाँध लिया है। परमात्मस्वभाव में बैठ गये, वहाँ बंधन तो दूर-दूर चला गया। परमात्मस्वभाव में कर्म का प्रवेश नहीं है; इसलिये शुद्धनय द्वारा परमात्मस्वभाव में प्रविष्ठ होकर गहराई में चला गया, ऐसे ज्ञानी को कर्म का बंधन नहीं होता।

आचार्यदेव महासिद्धान्त कहते हैं:—

इदमेमात्र तात्पर्यं हेयः शुद्ध नयो न हि।
नास्ति बन्धस्तद्त्यागात् तत्त्यागात् बन्ध एव हि॥१२२॥

* देखो, ये सर्व सिद्धांतों का सार! यह शास्त्र का तात्पर्य!

इस श्लोक पर से पं० बनारसीदासजी समयसार नाटक में कहते हैं कि—

यह निचोड यह ग्रन्थ कौ, ये है परम रस पोष;
शुद्धनय त्यागे बंध है, ग्रहे शुद्धनय मोक्ष॥

शुद्धनय के ग्रहण से मोक्ष है और शुद्धनय के त्याग से बंधन, यह समयसार का निचोड़ है, और यही परम शांत रस का पोषक है। धन्य है! संतों ने मार्ग को सुगम कर दिया है।

साधक जीवों को सदा शुद्धात्मा का ही आश्रय लेना चाहिए, शुद्धात्मा के आश्रय ही से साधकता है। शुद्धात्मा का आश्रय लेनेवाला ऐसा शुद्धनय ही ग्राह्य है, ग्रहण करने जैसा है। रागादि का आश्रय लेनेवाला ऐसा अशुद्धनय—व्यवहारनय—वह अग्राह्य है, ग्रहण करनेयोग्य नहीं है। जहाँ स्वभाव का आश्रय हुआ, वहाँ मोक्ष है और जहाँ विभाव-राग, विकार-का आश्रय किया कि वहाँ बंधन है। इस महासिद्धान्त को जानकर-मुमुक्षु शुद्धनय द्वारा शुद्धात्मा में-परिणमे-ये ही सर्व शास्त्रों का तात्पर्य है। जिन्होंने स्वभाव का आश्रय करके शुद्ध अनुभूति प्रगट की, उन्होंने परमशांत अतीन्द्रिय चैतन्य आनन्द रस चखा और तमाम शास्त्रों के निचोड़ को (तात्पर्य को) उसने प्राप्त कर लिया।

अहो! अमृतचन्द्र आचार्यदेव ने अद्भुत कलश की रचना की है। अध्यात्म कवि, अध्यात्म दृष्टि, अध्यात्म आचरण और अध्यात्म के सूर्य!! मानो अध्यात्म का सूरज उगा हो। उनके कलश में अध्यात्मरस की धारा टपकती है। १२३वं कलश में आचार्यदेव कहते हैं कि—शुद्धात्मा का अवलंबन करनेवाला यह शुद्धनय धीर है और उदार है। शुद्धनय की महिमा अत्यंत उदार है, शुद्धनय ऐसा बलवान है कि ज्ञान में स्थिर होकर कर्मों का मूलोच्छेदन कर देता है।—ऐसा महिमामय शुद्धनय है। उसे पवित्र धर्मात्माओं द्वारा कभी त्यागनेयोग्य नहीं। देखो, यह पवित्र

धर्मात्माओं का लक्षण! पवित्र धर्मात्मा शुद्धनय को कभी छोड़ते नहीं। जो शुद्धनय का अवलम्बन छोड़कर राग-विकार-के आश्रय की बुद्धि करते हैं, वे जीव पवित्र नहीं, वे जीव धर्मात्मा नहीं, वे जीव मलिन चित्तवाले हैं। सम्यक् दृष्टि का चित्त तो शुद्धनय से शोभित है, वही खरा कार्य करनेवाला है। बाहर से शरीर स्त्री का हो या पुरुष का, किंतु जिन्होंने अंतर में शुद्धनय द्वारा आत्मा की निर्मल अनुभूति प्राप्त की है, वे कृतकृत्य हैं, वे महान हैं। ऐसे पवित्र धर्मात्मा अपनी ज्ञान किरणों को ज्ञानस्वभाव में ही समेटकर चैतन्य के अचल शांति पूर्ण तेज को देखते हैं, परम आनन्दरस का अनुभव करते हैं और ज्ञान में लीनता-एकाग्रता द्वारा अल्प काल में केवलज्ञान प्रकट करते हैं। धर्मात्मा साधक होकर शुद्धनय द्वारा अपनी शुद्धात्मा को ही साध्य बनाते हैं। शुद्धनय ही उनका साधन है;—उसके साध्य-साधक और साधन तीनों ही निर्विकल्पपने से अपने ही में समा जाते हैं। बीच में दूसरा कोई साधक नहीं।

★

लोभ द्वारा जिसका चित्त व्याप्त हो, उसे तीन लोक का राज्य मिलने पर भी तृप्ति नहीं होती, सुख प्राप्त नहीं होता और भेदविज्ञानी जो लोभरहित संतोषी जीव दरिद्र-धनरहित हैं, तथापि सुखरूप निर्वाण उसे प्राप्त होता है। (१३९३, भगवती आराधना)

★ ★ ★

सर्व प्रकार के पुद्गलद्रव्य अनंत बार आहार-शरीर-इंद्रियरूप हुए और उनका उपभोग किया तथा छोड़ा; ऐसे सर्व पुद्गलों का संयोग-वियोग स्वभाव है; उनके ग्रहण-त्याग में विस्मय कैसा?

चैतन्यस्वरूप आत्मद्रव्य में निज महिमा सहित गुण-पर्यायों का पवित्र विलास दर्शक

परमात्म पुराण

(गतांक नं० २०३ से आगे)

अब द्रव्य जो चेतन पुरुष अपनी परिणति नारी का संयोग-विलास करता है, सो कहते हैं।

द्रव्य स्वयं द्रवत् (द्रव्यत्व) से है, द्रव्य जब द्रवे—प्रवाहित हो, तब पर्याय की सिद्धि है, द्रव्य अपने अन्वयी गुण को द्रवे-व्यापे है और क्रमवर्ती पर्याय को द्रवे है, इसलिये द्रव्य है।

द्रव्यां बिना (प्रवाहित हुये बिना) परिणति न हो, परिणमन हुए बिना गुण न होते, तब द्रव्य का अभाव होता, इसलिये द्रवनां द्रव्य को सिद्ध करता है। द्रवत् गुण द्रव्यरूप परिणति से है, इसलिये जो द्रवरूप न परिणमता तो द्रव न होता तब द्रव्य न होता। इसलिये परिणति द्रव्यत् को कारण है, इसलिये परिणति नारी से द्रवत् पुरुष की सिद्धि है।

द्रवत् अपनी परिणति नारी का अंग विलसित होता है। परणति नारी द्रवत् पुरुष को विलास करती है। द्रवत् सब गुण में है, सो सब गुण के द्रवत के सब अंग एक बार में परिणति स्त्री विलास करती है। जब सब गुण के द्रवत में विलसी, तब सब गुण के द्रवत् आधार सब गुण थे। ऐसे द्रवत् के विशेष विलास करनेवाली हुई। परिणति के मिलने से द्रवत् की सिद्धि हुई। इसलिये परिणति नारी का विलास द्रवत् को अनंत गुण के आधार पद का स्थापन करता है।

प्रश्नः—द्रवत् परिणति सब गुण में प्रविष्ट है, यहाँ द्रवत ही का विलास क्यों कहते हो, सब गुण कहो या सब गुण की परिणति कहो।

उत्तर—सब गुण में तो द्रवत हुआ, द्रवत की परिणति द्रवत के साथ हुई, इसलिये द्रवत की परिणति द्रवत में कहिये। अनंत गुण की परिणति अनंत गुण में कहिये, किसी गुण की परिणति किसी गुण में न कहिये, जिस गुण की परिणति को जिस गुण में कहिये, उस गुण के द्वारा सब गुण में आई और गुण में कहिये, तब और गुण की हुई, इसलिये द्रवत के द्वार द्रवत का है और इसलिये परिणति का परम विलास परम है-अनंत अतिशय सहित है।

द्रव्यत गुण पुरुष अपनी परिणति का विलास करे, सो महिमा अपार है। सार सुख उत्पन्न

होता है। इन दोनों के संभोग से आनन्द नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, वहाँ सब गुण परिवार के परम मंगल हुआ है।

अब अगुरुलघुगुण अपनी परिणति स्त्री का विलास कैसे करता है सो कहते हैं—

अगुरुलघु का विकार (विशेषकार्य) षट्गुणी वृद्धि हानि है। षट्गुणी वृद्धि अपने अनंत गुण में परिणमन से होती है। अनंत गुण (अनंत गुणित) परिणमन में अनंत गुण का रस प्रगट होता है, वह अनंत भेदभाव कर सहित अनंत रस, अनंत प्रभुत्व, अनंत अतिशय, अनंत नृत्य, अनंत थट-कलारूप-सत्ताभाव-प्रभाव-विलास युक्त है, उस विलास में नवरस वर्तते हैं, सो सब गुण गुण का रस नौषट्गुणी वृद्धि में सधता है सो कहते हैं।

सत्ता गुण में नऊ (-नौ) रस साधते हैं।

(१) प्रथम सत्ता में सिंगार (शृंगार) रस साधते हैं, सत्ता, सत्ता लक्षण को धारण करता है। सत्ता को सिंगार अनंत गुण है। सत्ता शाश्वत है। सत्ता ने क्या काम किया? ज्ञान सब ज्ञेय का ज्ञाता, अनंत गुण का ज्ञाता, जानन प्रकाश सर्वज्ञ शक्तिधारी, स्वसंवेदन रसधारी, अनंत महिमानिधि, सब अनंत द्रव्य, गुण, पर्याय जिसमें व्यक्त हुए, ऐसा ज्ञानरूपी आभूषण सत्ता गुण ने धारण किया, अतः यह सिंगार सत्ता शृंगार हुआ।

निर्विकल्पदर्शन, निर्विकल्परसधारी, अविकारी भेद विकल्प का जिसमें अभाव है, ऐसा सर्व पदार्थ का सकल सामान्य भावदर्शी सत्तामात्र अवलोकी, ऐसा आभूषण सत्ता गुण ने धारण किया, तब यह सिंगार सत्ता को हुआ।

वीर्य सब निष्पन्न (संपन्न) रखने को समर्थ सो सत्ता ने धारण किया तब सत्ता की शोभा हुई।

प्रमेय गुण सबको सब प्रमाण करनेयोग्य; इसलिये प्रमाण हुआ। वह सत्ता ने धारण किया, तब सत्ता प्रमाणरूप हुई, तब शोभित हुई, तब सत्ता का शृंगार है।

अगुरुलघु सत्ता ने धारण किया, तब सत्ता हलकी-भारी न हुई, तब सत्ता अपने शुद्धरूप रही, तब अच्छी-सुन्दर लगने लगी, तब सत्ता की शोभा हुई। ऐसे अनंत गुण सत्तागुण ने अपने में ही धारण किया तब सत्तागुण के सब गुण आभूषण हुई, वह ही शृंगार जानो।

प्रश्न—गुण में गुण नहीं तो सत्ता को अनंत गुणधारी क्यों कहा?

उत्तर—सत्ता के 'है' (अस्ति-सत्) लक्षण की अपेक्षा से सब 'है' लक्षणरूप गुण है। 'है'

लक्षण सत्ता का है। इसलिये सत्तागुण में (सब) आये। द्रव्य तो सब गुण के साथ लक्षणों का आधार है। सत्ता एक 'है' लक्षण द्वारा आधार ऐसा भेद विवक्षा से प्रमाण है। इसप्रकार सत्ता सब रूप आभूषण बनाकर शृंगार को धारण कर शोभायमान है।

सत्ता द्रव्य-गुण-पर्याय के विलासभावरूप रमते हैं। सब विलासरस सत्तागुण में है। इसलिये शृंगाररस सत्तागुण में हुआ। सत्तागुण और सत्तागुण की परिणति दोनों की रसवृत्ति प्रवृत्ति शृंगार है। सत्ता परिणति सत्ता का वेदन करे, तब रस निष्पत्ति (रस की उत्पत्ति) हुई और सत्तागुण अपनी परिणति को धरे, तब आप ही परिणति रस को धरे, तब दोनों के मिलने से आनन्दरस होवे, वह ही **शृंगार** है।

अब सत्तागुण में वीररस कहते हैं

(२) वीररस—सत्ता से प्रतिकूल का अभाव सत्ता ने किया, अपनी वीरवृत्ति द्वारा ऐसी वीर्यशक्ति सत्तागुण में है, इसलिए सत्ता शाश्वत निष्पत्ति (प्राप्ति; सिद्धि) को धारण करता है। 'है' (इसप्रकार का) विलास द्रव्य-गुण-पर्याय का वीर्य से सत्ता करता है, इसलिए वीर्यरस में हैं। जितने गुण हैं, वे अपने-अपने प्रभाव को धारण करते हैं और वे वे सब गुण में शाश्वतभाव, विकासभाव, आनन्दभाव, वस्तुत्वभाव, प्रकाशभाव, अबाधितभाव ऐसे अनंतभाव वीरत्व में आये वीर्य की शक्ति में इससे वीर्यरस में सर्प को रखने का पराक्रम आया, इसलिए वीररस सत्तागुण में हुआ [सत्ता में है पना सदा सत्-अस्तित्व का अनंत बल-स्वसामर्थ्यरूप है, ऐसा है लक्षण होने से] सत्ता है इसलिए सत्तागुण ने सबको 'है' भाव दिया। निष्पत्ति (उत्पत्ति; प्राप्ति) वीर्यगुण ने की इसलिये **वीररस** सत्ता में कहा।

(३) करुणारस सत्तागुण में कहते हैं

सत्ता में करुणा है क्योंकि सत्तागुण (अस्तित्व नामक) है भाव अन्य गुण को न देता तो सब विनाश हो जावे, इसलिए अपना है भाव सबको देकर रखता है, तब करुणा सधी इसलिए करुणारस सत्तागुण में आया।

(४) वीभत्सरस सत्ता में कहते हैं।

सत्तागुण अपने है भाव के प्रभाव का विलास बड़ा देखा, तब और प्रतिकूल भाव से ग्लानि हुई तब प्रतिकूल भाव ने धारण किया, तब सत्ता सत्ता में वीभत्सरस कहा।

(५) भयरस सत्ता में है।

सत्ता ऐसे भय को धारण करता है जो असत्ता में न आये उसे भय कहते हैं।

(६) सत्ता हास्य रस को धारण करता है।

दर्शन-ज्ञान परिणति द्वारा जो उल्लास आनन्द करता है, दर्शन-ज्ञान-चारित्र की सत्ता वही हास्य नाम जानना।

(७) रौद्ररस कहते हैं।

सत्तागुण असत्ता प्रतिकूलतार को अपने वीर्य द्वारा सदा जीतता रहता है, वहाँ सदा परभाव का अभाव करना, पर के अभावरूप भाव वही रौद्ररस है।

(८) अद्‌भुतरस

अद्‌भुतता सत्तागुण में ऐसी है-साकारज्ञान है, निराकार दर्शन है, दोनों की सत्ता एक है। यह अद्‌भुत भावरस है।

(९) शान्तरस

सत्तागुण में अन्य विकल्प नहीं स्वशान्तरूप है, इसलिये शान्तरस है।

इसप्रकार नवरस एक सत्तागुण में सधै है। इसीप्रकार अनंत गुणों में नवोंरस सधते हैं, ऐसा जानना। रसयुक्त काव्य प्रमाण है, जैसे भोजन नमक **रस** से स्वादिष्ट लगता है। उसीप्रकार काव्य रससहित भला (रुचिकर) लगता है। उसीप्रकार अनंत गुण अपने रस भरे शोभा पावे, इसलिए रस वर्णन किया।

गुणपुरुष गुणपरिणति नारी का विलास किस प्रकार करते हैं ?

ज्ञानगुण अपनी ज्ञान परिणति का विलास करता है। ज्ञान के अंग में परिणति का अंग आया तब अविनाशी, अखंडित महिमा निजघर की प्रगट हुई। ज्ञान का युगपत् भाव परिणति ने वेदन किया, तब एकता का रस उत्पन्न हुआ। परिणति ज्ञान में न होती तो अनंत शक्तिरूप ज्ञान ने परिणमता, तब ज्ञान की महिमा न रहती, इसलिये ज्ञानगुण निज परिणति को धारण करके विलास करता है। ज्ञान में जानपना था, सो परिणति परिणमी, तब जानपना वेदन किया, तब ज्ञान रस प्रगट हुआ, ज्ञान में अतीन्द्रिय भोग परिणतिरूप स्त्री के संयोग से है। इसलिए ज्ञानगुण अपनी नारी का विलास करता है, तब आनन्द पुत्र होता है।

इसप्रकार अनंतगुण पुरुष सब अपनी गुण परिणति का विलास करता है। सब गुण का सर्वस्व परिणति सर्व गुण की है वेद्यवेदकतारूप रस सब परिणति से सबमें प्रगट होता है।

प्रश्न—एक गुण सब गुण के रूप होकर वर्तते हैं, वहाँ सब गुण की परिणति ने सबका विलास किया कि न किया ?

समाधान—गुणरूप परिणति जिस गुण की है, उसकी ही है; अन्य की नहीं। उसमें जो पर्याय द्वारा व्यापकता की है, उस पर्यायरूप अपने अंग में परिणमता है—उस विलास को करता है। इसलिये अपने अंग गुण के है, वह सब विलास करता है। गुण निजपुरुष है, उसको विलसे है। जो यह न हो वे तो अन्य गुण की परिणति अन्य गुणरूप होवे, तब महादूषण आवे। इसलिए अपनी परिणति को जो गुण है, वही विलास करता है। यहाँ अनंत सुख विलास एक-एक गुण परिणतिरूपी स्त्री के योग से (गुण) करता है। सब गुण इसप्रकार विलास करते हैं। अनंत महिमा को धारण करते हैं ऐसे परमातम राजा के राज में सब गुण पुरुष की नारी अनंत विलास करके सुखी है। (क्रमशः)

तीसरा रत्न (गाथा-२७३)

मोक्षतत्त्व का साधन क्या ? वह बतलाता है

(गतांक से आगे)

सम्यग्विदितपदार्थास्त्यक्त्वोपधिं बहिस्थमध्यस्थम्।
विषयेषु नावसक्ता ये ते शुद्धा इति निर्दिष्टाः ॥२७३॥

भगवंत शुद्धोपयोगी मुनि, वे मोक्ष का साधन तत्त्व हैं। सम्यग्ज्ञानपूर्वक चैतन्य में आत्म-परिणति ऐसी लीन हुई है कि विषयों में किंचित् आसक्ति नहीं रही है—ऐसी परिणतिरूप से परिणमित मुनि स्वयं उग्र पराक्रम द्वारा मोक्ष की साधना कर रहे हैं; इसलिए उन्हीं को मोक्ष का साधनतत्त्व जानना।

—कैसे हैं महिमावान शुद्धोपयोगी मुनिवर ? प्रथम तो, अनेकांत द्वारा ज्ञात होनेवाला जो सकल ज्ञातृतत्त्व तथा ज्ञेयतत्त्व का यथास्थित स्वरूप, उसके पांडित्य में जो प्रवीण हैं....

मुनिदशारूप जो मोक्ष का साधन, उसके तीन अवयव हैं—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। सर्व प्रथम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के बिना चारित्रदशा कभी नहीं होती। भेदज्ञानरूप जो पांडित्य—उसमें प्रवीणता से जिन्होंने ज्ञानस्वभावी आत्मा का और ज्ञेयतत्त्वों का यथार्थ स्वरूप जाना है; अनेकान्त द्वारा स्व-पर तत्त्वों को भिन्न-भिन्न यथावत् जानकर भेदज्ञान प्रगट किया है।—यह मोक्ष के साधन की पहली बात!

आत्मा, आत्मारूप से है और परज्ञेयरूप से नहीं है; आत्मा का ज्ञायकस्वभाव, ज्ञायकस्वभावरूप से है और रागरूप से नहीं है।—ऐसे अनेकांत द्वारा यथार्थ वस्तुस्वरूप जानकर प्रथम तो भेदज्ञान में प्रवीणता प्रगट की है अर्थात् सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्रगट किये हैं; तत्पश्चात् चारित्र होता है।

अब, भेदज्ञान द्वारा जितने स्व-पर को भिन्न जाना है; उसमें से अंतरंग में जगमग करते हुए चैतन्यमय स्वतत्त्व को समस्त बाह्य संग से तथा अंतरंग-रागादि के संग से भी पृथक् करके, उसी में आत्मा की परिणति को लगाया है; इसप्रकार चिदानन्द तत्त्व में ही आत्मपरिणति लीन रहने के कारण प्रशांत हुई है, इसलिये बाह्य विषयों में किंचित् भी आसक्ति नहीं होती। अहा, ऐसी दशा में झूलते हुए संत-मुनि सकल महिमावंत हैं। आचार्यदेव कहते हैं कि ऐसे सकल महिमावंत भगवंत शुद्धोपयोगी संत अपने आप स्वयं मोक्ष के साधन हैं, अन्य कोई बाह्य साधन नहीं है। स्वरूप में एकाग्रता द्वारा स्वयं ही मोक्ष के साधनरूप होकर, अनादि से बँधे हुए कर्मकपाट को अति उग्र प्रयत्न से खोल रहे हैं। ऐसे संत, मोक्ष को साधने में शूरवीर हैं। ऐसी दशारूप जो मोक्षसाधन, वह अभिनन्दनीय है—प्रशंसनीय है, उसका मनोरथ करने जैसा है।

देखो, यह मुनिदशा! यह चारित्रदशा! और यह मोक्ष का साधन! मुनियों की जो शुद्धपरिणति, वही मोक्ष का साधन है; राग भी जहाँ साधन नहीं है; वहाँ बाह्यसाधन की तो बात ही कहाँ रही! प्रथम यथार्थ भेदज्ञान प्रगट किये बिना, स्वतत्त्व में परिणतिरूप शुद्धता कभी प्रगट होती ही नहीं और शुद्धता के बिना मोक्ष का साधन नहीं होती।

जो शुद्धपरिणतिरूप परिणमित होकर स्वयं मोक्ष के साधन हुए हैं, मोक्षमार्गी हैं—ऐसे भगवंत शुद्धोपयोगी महिमावान मुनिवर ही प्रशंसनीय हैं। शुभ, वह प्रशंसनीय नहीं है, शुभ, वह मोक्ष का साधनतत्त्व नहीं है, वह तो आस्रवतत्त्व है।

अहा, यह रत्न (गाथा-२७३) भगवार अरहंतदेव के शासन में कहे हुए मोक्ष के साधन को

प्रकाशित करता है ! मोक्ष का यथार्थ साधन क्या है, उसे यह सूत्र प्रसिद्ध करता है। प्रसिद्धरूप ऐसा जो मोक्षमार्ग, वह तो स्वतत्त्व की शुद्धपरिणति में ही समा जाता है। ऐसे तत्त्व को मोक्ष के साधनरूप से अरहंतदेव के मार्ग में भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने प्रसिद्ध किया है। जो इससे विरुद्ध साधन मानता है, उसे अरहंतदेव के मार्ग की खबर नहीं है, वह अरहंतदेव के मार्ग से बाहर है।

अरे भाई ! प्रथम तू लक्ष में तो ले कि मार्ग ऐसा है... मोक्ष का सच्चा साधन ऐसा है ! सच्चे साधन को न पहिचानकर विपरीत साधन माने तो वह विपरीत मार्ग से संसार में ही भटकेगा किंतु मोक्ष की साधना नहीं कर सकता। इसलिए स्वरूप को साधने का सत्य मार्ग क्या है—उसकी बात पहले रुचना चाहिए।

स्वरूप की बात जिसे रुचिकर नहीं लगती, वह स्वरूप के साथ एकता कैसे करेगा ? रुचि के बिना एकता नहीं होती; चिदानन्दस्वरूप जिसे रुचिकर नहीं लगत, श्रद्धा-ज्ञान में नहीं जमता, वह उसमें एकता अथवा एकाग्रता कैसे करेगा ? पहले तो निर्णय की शक्ति चाहिए और फिर एकाग्रता के पराक्रमरूप शूरवीरता से कर्म बंधन तोड़ डालता है।

भगवान अरहंतदेव के शासन में मोक्षतत्त्व का साधन क्या है, उसका सर्वथा संक्षेप में कथन करता हुआ यह सूत्र कहता है कि—सकल महिमावंत भगवंत शुद्धोपयोगी संत ही मोक्ष का साधन हैं उनका शुद्धोपयोग, वह कर्मों को तोड़ डालने का अति उग्र प्रयत्न है और वह शुद्धोपयोग महिमावंत है। शुद्धोपयोग के अतिरिक्त अन्य कोई वास्तव में मोक्ष का प्रयत्न या मोक्ष का साधन नहीं है—ऐसा प्रसिद्ध करके यह तीसरा रत्न अरहंतदेव के शासन के मोक्षमार्ग को प्रकाशित करता है।

अहा ! मोक्ष को साधनेवाली यह मुनिदशा ! ! वे मुनि चैतन्य की शांति में स्थिर हो गये हैं.... स्वरूप की लीनता में से बाहर निकलना उन्हें अच्छा नहीं लगता... परिणति को बाह्य विषयों से पराङ्मुख करके अंतरोन्मुख कर दी है... शरीर की चिंता नहीं... वन के शेर-चीते दहाड़ते हों तो भी भयभीत होकर स्वरूप से किंचित् चलायमान नहीं होते। उस दशा की भावना भाते हुए श्रीमद् राजचंद्रजी कहते हैं कि—

एकाकी विचरतो वली स्मशान माँ,
वली पर्वत माँ बाघ सिंह संयोग जो;

अडोल आसन ने मनमां नहि क्षोभता,
परम मित्रनो जाणे पाम्या योग जो....
अपूर्व अवसर अेवो क्यारे आवशे ?

—ऐसी शुद्धोपयोगी मुनिदशा वह मोक्ष का साधन है। सम्यग्दर्शन में भी मोक्ष का अंशतः साधनपना है, परन्तु यहाँ तो उत्कृष्टरूप से मोक्ष का परिपूर्ण साधन बतलाना है। शुद्धरत्नत्रय, वह मोक्ष साधन ही है; वह बंध साधन नहीं है तथा राग तो बंधसाधन ही है और मोक्षसाधन नहीं है—इसप्रकार बंध-मोक्ष विलक्षण पंथ को यह रत्न प्रसिद्ध करते हैं। जो जीव बंध-मोक्ष के कारणरूप भावों को भिन्न-भिन्न स्वरूप से नहीं जानता, उसे जैनशासन या मुनिदशा की भी खबर नहीं है। **अहा, मुनि तो शुद्धोपयोग द्वारा निर्विकल्प आनन्दरस का पान करते-करते मोक्ष की साधना कर रहे हैं। मुनिवर मोक्ष की साधना में शूरवीर हैं; चैतन्य में एकाग्रतारूप महापराक्रम द्वारा कर्मों को छेदकर शूरवीतरा से वे मोक्ष की साधना कर रहे हैं।**

'मुक्ति का मारग है, वीरों का, नहिं कायर का काम...' चैतन्य में एकाग्रतारूप शूरवीरता द्वारा मोख की साधना होती है; किन्तु 'कर्म का बल बहुत है, हम क्या करें ?—कर्म की शक्ति कम हो तो चारित्र आये'—ऐसी कायरता की बात करे, वह मोक्ष की साधना नहीं कर सकता। मुनिवर तो चिदानन्द तत्त्व में लीन होकर, शुद्धोपयोग प्रगट करके, अति उग्र पुरुषार्थरूप पराक्रम द्वारा कर्म को छेदकर मोक्ष को साधते हैं। इसप्रकार शुद्धोपयोगरूपी शूरवीरता, वह मोक्ष का साधन है। शुद्धोपयोगी मूनिवर मोक्ष को साधन में शूरवीर हैं, वे ही मोक्ष का साधन तत्त्व हैं—ऐसा जानना। मोक्ष को साधने में शूरवीर ऐसे वे मुनिवर अपने सर्व मनोरथ शुद्धोपयोग द्वारा सिद्ध करते हैं।

—इसप्रकार मोक्ष का साधन कहा। अब, चौथे रत्न द्वारा आचार्यदेव उस मोक्ष के साधनरूप शुद्धोपयोग का सर्व मनोरथ के स्थानरूप से अभिनन्दन करेंगे।

सत्य-प्रशंसनीय जीवन

आत्मा का सच्चा जीवन क्या है, वह श्री अमृतचंद्राचार्यदेव जीवत्वशक्ति के वर्णन में बतलाते हैं—बाह्य में सुख-सुविधा मानकर वहाँ बाह्य अनुकूलता से संतुष्ट होना—उसमें जीना और असुविधा से खेद खिन्न होकर असंतोषपूर्वक जीना, वह जीव का सच्चा जीवन नहीं है। अंतर में शाश्वत अनंत चैतन्यशक्ति की सम्पदा से परिपूर्ण ऐसे एकरूप समस्वभावी चैतन्यभाव में (ज्ञायकभाव में) तन्मय होकर स्वाश्रित ज्ञान-आनंदमय जीवन जीना ही सच्चा जीवन है। श्री नेमिनाथ भगवान की स्तुति में कहा है कि—हे भगवान! आपका जीवन धन्य है! आपने अपने जीवन को सफल बनाया है!

द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों में एकरूप चैतन्यमय भावप्राण को धारण करके स्थिर रहे, वह जीवन सच्चा है। तेरे सत्य जीवन का कारण कौन? अपने जीवन के प्राण को पहिचान। चैतन्य भावप्राण ही तेरे जीवन का कारण है। ऐसे चैतन्य भावप्राण को धारण करनेवाली जीवत्वशक्ति की प्रतीति के साथ ऐसी अनंत शक्तियाँ एकसाथ आत्मा में उछलती हैं-ऐसे ज्ञानमात्र आत्मा की पहिचान मोक्षतत्त्व को देनेवाली है। (समयसार परिशिष्ट प्रथम शक्ति के प्रवचन से)

धर्म

धर्म का स्वरूप कहने के लिये श्री समंतभद्राचार्य ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार गाथा २ में कहा है कि—

देशयामि समीचीनं, धर्मं कर्मनिवर्हणम्।
संसारदुःखतः सत्वान्, यो धरत्युत्तमे सुखे॥२॥

अर्थ—मैं (समंतभद्राचार्य) ग्रंथकर्ता, इस ग्रंथ में उस धर्म का उपदेश करता हूँ जो प्राणियों को पंच परिवर्तनरूप संसार के दु:खों से निकालकर स्वर्ग-मोक्ष के बाधारहित उत्तम सुखों में धारण करे। वह धर्म कैसा है, जिसमें वादी प्रतिवादी कर तथा प्रत्यक्ष अनुमादि कर बाधा नहीं आती, और जो कर्म बंधन को नष्ट करनेवाला है, उस धर्म को कहता हूँ।

भावार्थ:—संसार में **धर्म** ऐसा नाम तो सभी लोग कहते हैं परंतु धर्म शब्द का अर्थ तो ऐसा है जो नरक, तिर्यंच आदि गति में परिभ्रमणरूप दु:खों से आत्मा को छुड़ाकर उत्तम आत्मिक, अविनाशी, अतीन्द्रिय मोक्षसुख में धारण करे, वह धर्म है। ऐसा धर्म मोल नहीं आता जो धन देकर अथवा दान सम्मान आदि से प्राप्त करे तथा किसी का दिया हुआ नहीं आता, जो सेवा उपासना से प्रसन्न कर लिया जाये। तथा मंदिर, पर्वत, जल, अग्नि, देवमूर्ति तीर्थादि में नहीं रखा है, जो वहाँ जाकर ले आवे अथवा उपवास, व्रत, कायक्लेश आदि तप में, शरीरादि कृश करने से भी नहीं मिलता। तथा देवाधिदेव के मंदिरों में उपकरण, दान-मंडल-पूजन आदि के द्वारा तथा घर छोड़कर वन श्मशान में निवास करने से तथा परमेश्वर के नाम जाप्य आदि द्वारा नहीं पा सकते क्योंकि धर्म तो आत्मा का स्वभाव है। पर में आत्मबुद्धि छोड़ अपने ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव का श्रद्धान, अनुभव तथा ज्ञायकस्वभाव में ही प्रवर्तनरूप जो आचरण, सो धर्म है। तथा—

उत्तम क्षमा आदि दसलक्षणरूप अपने आत्मा का परिणमन तथा रत्नत्रयरूप तथा मिथ्यात्व रागादि की उत्पत्तिरहित ऐसी जीवों की दयारूप आत्मा की परिणति होय, तब आत्मा आप ही धर्मरूप होगा। परद्रव्य, क्षेत्र, काल, आदिक तो निमित्तमात्र हैं।

जिससमय यह आत्मा मिथ्यात्व, रागादिरूप परिणति छोड़ वीतरागरूप हुआ देखता है, तब (निश्चय धर्म का सद्भाव से ही असद्भूत उपचारवाला व्यवहारनय के द्वारा) मंदिर, प्रतिमा,

तीर्थ, दान, तप, जप, समस्त ही धर्मरूप है। और यदि अपना आत्मा उत्तम क्षमादि वीतरागरूप सम्यग्ज्ञान नहीं करता तो वहाँ कहीं भी धर्म नहीं होता। यदि शुभराग हो तो पुण्यबंध होता है और अशुभराग, द्वेष, मोह होवे तो पापबंध होता है; जहाँ शुद्ध श्रद्धान-ज्ञान-स्वरूपाचरण धर्म है, वहाँ बंध का अभाव है। बंध का अभाव होने से ही उत्तम सुख होता है।

अब ऐसा सुख का कारण जो आत्मा का स्वरूप धर्म उसको प्रगट दर्शाने के लिये सूत्र कहते हैं—

सददृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।
यदीयंप्रत्यनीकानि भवन्तिभव पद्धतिः ॥३॥

अर्थ—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र इन तीनों को धर्म के ईश्वर भगवान तीर्थंकर परमदेव '**धर्म**' कहते हैं और इनसे प्रतिकूल-विरुद्ध पराश्रयरूप व्यवहार शुभाशुभभाव; तथा मिथ्यात्वादि है, वह संसार परिभ्रमण की परिपाटी है।

संवर की शुरुआत

(माघ कृष्णा १४ के मंगल प्रवचन से)

जैसे नवीन मेघ की वर्षा होने पर पृथ्वी प्रफुल्लित होती है; उसीप्रकार गुरु गगन से नवीन श्रुतवर्षा होने से जिज्ञासु जीवों के हृदय श्रुतामृत झेलकर आनन्द विभोर बने। प्रवचन की शुरुआत संवर अधिकार से हुई थी; शुरु में गुरुदेव ने कहा : धर्म की शुरुआत संवर से होती है; अपने प्रवचन में भी आज संवर का आरंभ हो रहा है।

यह समयसार शास्त्र है 'समयसार' शब्द वाचक है और शुद्धात्मा उसका 'वाच्य' है। यह समयसार शास्त्र शुद्ध आत्मा का स्वरूप बताता है। यह देह तो जड़ तत्त्व है, उससे भिन्न उसे और खुद को जाननेवाला एक ज्ञानतत्त्व अन्दर अरूपी-निराकार है, वह सत्‌चित् आनन्दस्वरूप है; अनादि-अनंत जो है, वह सत् है; अतीन्द्रियज्ञान और आनन्द उसका स्वरूप है, परंतु जीव ने अपने

ऐसे स्वरूप की पहचान पहले कभी की नहीं। आत्मपरिचय प्राप्त करना, यही धर्म की अपूर्व शुरुआत है और उसका नाम संवर है।

जैसे छोटी पीपर के प्रत्येक दाने में ६४ प्रहरी चरपराहट होने की शक्ति है, उसमें से ही उसी से वह प्रगट होती है; उसीप्रकार प्रत्येक आत्मा में सर्वज्ञ होने की शक्ति है। उस सर्वज्ञस्वभाव का भान करके, उसमें लीनता द्वारा जिसने सर्वज्ञता प्रकट की, ऐसे भगवान् सर्वज्ञदेव की वाणी में आत्मा का स्वरूप कैसा बताया है? उसी के सम्बन्ध में ये बात है। सर्वज्ञता और पूर्णानन्द की ताकत चैतन्य में भरी है। चैतन्यतत्त्व आनन्दरस से पूर्ण भरपूर है।—वर्तमान अवस्था में जो राग-द्वेषादि दोष दिखते हैं, वे क्षणिक हैं, वे त्रिकाली स्वभाव में नहीं हैं। त्रिकाली स्वभाव के आश्रय से वे दोष टलते हैं और निर्दोषिता प्रगट होती है। जो जीव टलना चाहते हैं और निर्दोषता प्रगट करना चाहते हैं, वे स्वत: स्वभाव से दोषरूप नहीं होते। निर्दोषिता स्वभाव में न होय तो निर्दोषिता कहाँ से आयेगी? अत: आत्मा निर्दोष ज्ञान और आनन्दस्वरूप है।

अब ऐसी ज्ञानस्वरूप आत्मा क्या काम करे, तब उसको धर्म हो? उसी की बात इस संवर अधिकार में है। संवर अर्थात् भेदज्ञान। अनंत काल में स्व क्या और पर क्या, ज्ञान क्या और राग क्या, उसका यथार्थ भेदज्ञान जीव ने कभी क्षणभर भी नहीं किया, समझा नहीं। राग-द्वेष की शुभ-अशुभ वृत्तियाँ उठती हैं, वह मेरा कार्य और मैं उसका कर्ता। ऐसी बुद्धि जहाँ तक रहती है, तब तक संसार का परिभ्रमण टलता नहीं। जैसे कच्चा चना कषैला लगता है परन्तु उसको सेंकने पर उसके मिठास का स्वाद प्रगट होता है और बाद में वह उगता भी नहीं। वैसे ही चैतन्य में क्रोधादि कषायों का जो कषैलापन है, वह उसका वास्तविक स्वाद नहीं, किंतु सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र द्वारा उसका मूल मीठा अतीन्द्रिय चैतन्य स्वाद अनुभव में आता है, एक सेकेंड भी जो भेदज्ञान प्रगट करे, उसको अपूर्व शांति का स्वाद आवे; संवर की शुरुआत हो जाती है। सुख बाहर नहीं, दु:ख भी बाहर नहीं। सुख अंतरंग में आत्मा का स्वभाव है और उसकी विकृति ही दु:ख है। चैतन्य का मूल स्वभाव दु:खरूप नहीं, ऐसे स्वभाव को जानकर अंतर्दृष्टि द्वारा निर्विकल्प चिदानंदस्वरूप में प्रवेश पा जाना ही अपूर्व शांति, धर्म और संवर है; उसका यह आरंभ है।

प्रभो! तेरी प्रभुता तेरे स्वभाव में भरी है, उसमें स्वसन्मुख होते सम्यग्दर्शन अर्थात् संवर की शुरुआत होती है। चैतन्य से बाहर परद्रव्य का तेरा कार्य नहीं और रागादि की लागणी (शुभाशुभ वृत्ति) वह भी सचमुच तेरे ज्ञान का कार्य नहीं। भगवान आत्मा, तू आनन्द की मूर्ति! और राग में-

विकार में-रुका!—यह तो संसार परिभ्रमण चक्र में चक्कर खाने की नींव ही है। यह चक्कर खाना किसप्रकार टल सकता है और संवर की शुरुआत किसप्रकार हो? यह बताते हुए मंगलाचरण के रूप में कहते हैं कि

मोह राग रुष दूर करी, समिति गुप्ति व्रत पाली।
संवर मय आत्मा कर्यो, नमूँ तेह मनधारी॥

चैतन्यस्वरूप में असावधानी, वह मोह है। भेदज्ञान द्वारा जिन्होंने अंतर स्वरूप में सावधानी करी, स्थिरता की और आत्मा को संवररूप किया, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमे-ऐसे संतों को, ऐसे महात्माओं को, ऐसे मुनियों को और ऐसे धर्मात्माओं को मैं नमस्कार करता हूँ।

जैसे नाटक में तीन घंटे में किसी का सारे जीवन का दिग्दर्शन करा देते हैं, वैसे ही इस समयसार नाटक में जीव का स्वरूप बताया है; पहले अज्ञानदशा कैसी थी, बाद में साधकता कैसे प्राप्त हुई और बाद में सिद्धपद की साधना की, इन सबका स्वरूप इस समयसार में बताया है। उसमें यह पाँचवाँ संवर अधिकार है, उसके मंगलाचरण में आचार्यदेव संवर के कारणरूप भेदज्ञान ज्योति की महिमा करते हैं।

अज्ञान बंध का कारण है और भेदज्ञान मोक्ष का कारण है। अनादि संसार से लेकर अज्ञान के लिये जो आस्रव हैं, उस आस्रव को भेदज्ञान ज्योति ने हटा दिया है-उड़ा दिया है और संवर को प्रकट किया है। अनादि संसार में कभी न हुआ, ऐसा अपूर्व भेदज्ञान होते क्या होता है? आनन्द -रसरूप आत्मा प्रकटित हो, आस्रव को दूर करके संवर का आरम्भ होता है। भूल भी आत्मा की दशा में थी, भूल को नष्ट कर भेदज्ञान हुआ, वह भी आत्मा की दशा ही है। आस्रव और संवर एक दूसरे से विरुद्ध हैं। अनादि से आस्रव चले आते रहे हैं, अब संवर ने उसे जीत लिया है। अज्ञानरूपी छिद्र द्वारा आत्मा में कर्म (ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म और राग-द्वेष-मोहरूप विकारी भावकर्म) आते थे, उनका नाम आस्रव है, और जहाँ शुद्ध आत्मा का भान हुआ, वहाँ अशुद्धता हटी और कर्म का आना अटक गया, उसका नाम संवर है।

अनादि मोटा-राजा-बादशाह भी आस्रव के पंजे में फंसे हुए थे अर्थात् आस्रव को गर्व था-अभिमान था-कि मेरे पंजे में से कोई छूटा नहीं। पर अब तो धर्मात्मा भेदज्ञान ज्योति द्वारा उस आस्रव को जीत लिया है, आस्रव को उन्होंने उड़ा दिया है। ऐसी भेदज्ञान ज्योति महा मंगलरूप है-राग-द्वेष तो मैं नहीं हूँ, मैं तो ज्ञान हूँ। भेदज्ञान द्वारा आस्रव का तिरस्कार किया है, पहले अज्ञानदशा

में वह राग-द्वेष का आदर करता था और अब नित्य ज्ञानस्वभाव के आदर द्वारा उस पुण्य-पाप का आदर छूट गया अर्थात् आस्रव दूर हुआ और संवर की शुरुआत हुई। ऐसा संवर अपूर्व है। जो संवर प्रगट हुआ, वह सदा विजयी है। चैतन्यस्वभाव का अनुभव करके आस्रव को दूर किया, सो तो किया, आत्मा की जो ज्ञान-आनन्द दशा प्रगट हुई, वह सादि-अनन्त जयवंत वर्तती है। जो भेदज्ञान ज्योति प्रगटी, उसके विकास को कोई रोक नहीं सकता, अप्रतिहतपने से वह केवलज्ञान प्राप्त करेगी। वह भेदज्ञान ज्योति सदा ही विजयी है; इसप्रकार मंगलदर्शक मांगलिक माणिकस्तंभ का रोपण हुआ।

★

प्रवचनसार गाथा ६० में आचार्यदेव कहते हैं कि—केवलज्ञान एकांतिक सुख है—ऐसा सर्वथा अनुमोदन करनेयोग्य है—आनन्द से सम्मत करनेयोग्य है। अर्थात् हे जीव! केवलज्ञान को सम्मत करने से तुझे अपने आत्मा में अवश्य आनन्द होगा।

★ ★ ★

शुभरूप और अशुभरूप (स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्द) जीव को किंचित् भी सुख-दुःख नहीं करते; मोही होकर, उन्हें देखकर उनमें अच्छा-बुरा माननेवाला अपने संकल्प विशेष से सुखी-दुःखी होता है।

धर्म की सच्ची प्रभावना

सम्यग्दृष्टि–धर्मात्मा खुद में चैतन्य धर्म की आराधना के आधार पर और अन्य जीवों में उस आराधना की महिमा प्रसिद्ध कर धर्म की प्रभावना करते हैं।

जिसको अपने में तो धर्म का उद्भव नहीं हुआ, और दूसरे जिसमें धर्म का उद्भव हुआ है, ऐसे धर्मात्माओं के प्रति कोई सम्मान नहीं—ऐसे जीवों द्वारा धर्म की प्रभावना हो सकती नहीं।

धर्म की प्रभावना धन द्वारा नहीं होती। धर्म की प्रभावना धर्मात्मा द्वारा होती है। धर्म, धर्मात्मा के आधार पर है; धर्म कोई धन के आधार पर नहीं, परंतु बाहर की हा ही हू के हुल्लड़ से लोगों को धर्मात्मा के हृदय को पहचानना मुश्किल हो गया है।

लाखों करोड़ों, धर्मशास्त्रों के पढ़ने से अपने आप जो रहस्य प्राप्त नहीं होता, वह रहस्य ज्ञानी धर्मात्मा एक वाक्य में समझा देंगे।

लाखों करोड़ों, रुपये खर्च करने से जो प्रभावना नहीं होती, वह धर्मात्मा के एक वचन से होगी।

ज्ञानी धर्मात्माओं का जीवन ही स्वयं प्रभावना कर रहा है।

धर्म के आराधक धर्मात्मा को देखने से मुमुक्षुओं को आराधना का उत्साह जागृत होता है, कि वाह! यह धर्मात्मा कैसी धर्मसाधना कर रहे हैं!! और मैं भी ऐसे धर्म की साधना करूँ।

वीतरागी मुनिराज ध्यान में बैठे–बैठे भी धर्म की महान प्रभावना कर ही रहे हैं, क्योंकि उनकी वीतरागी ध्यान मुद्रा देखकर ही दूसरे बड़े जीवों को धर्म की भावना जागृत होती है।

भावशुद्धि के बिना

मात्र बाह्य त्यागादि मोक्ष का साधन नहीं होते

अष्टपाहुड़-भावपाहुड़ गाथा-४९ में कहा है कि-बाह्य में कुटुम्बादि से मुक्त होकर मुनिवेश धारण कर ले, किंतु अंतर में कर्तृत्व-ममत्वरूप वासना न छूटे तो उसे मुक्त अथवा मुनि नहीं कहते। गाथा-४४ में भावशुद्धि के बिना सिद्धि न होने के सम्बन्ध में श्री बाहुबलि का उदाहरण है। गाथा-४५ में कहते हैं कि:—

'मधुपिंगल नामक मुनि ने शरीर तथा आहारादि में व्यापार छोड़ा था, तथापि वे निदान द्वारा भावश्रमणपने को प्राप्त न हुए।'—तत्सम्बन्धी दृष्टान्त निम्नानुसार है:—

इस भरतक्षेत्र स्थित सुरम्य देश में पोदनापुर का राजा तृणपिंगल था, वह चारण युगलनगर के राजा सुयोधन की पुत्री सुलसा के स्वयंवर में आया था और वहीं साकेतपुरी का राजा सगर भी आया था। राजकुमारी सुलसा तो अपनी तथा अपनी माता आदि की इच्छारूप गुणनिधान ऐसे मधुपिंगल को पसंद करनेवाली थी, किंतु सगर के मंत्रियों ने सगर को संतुष्ट करने के लिये कल्पित सामुद्रिक शास्त्र बनाया और मधुपिंगल को दोष लगाया कि इसके नेत्र पिंगल (मांजरे) हैं, इसलिये जो कन्या इससे विवाह करेगी, वह मृत्यु को प्राप्त होगी। यह जानकर राजकन्या ने सगर के गले में वरमाला पहना दी। मधुपिंगल का वरण नहीं किया, इसलिये उसने विरक्त होकर दीक्षा ग्रहण कर ली। फिर एक-एक महीने के उपवास करके आहार के लिये नगर में आने पर सुना कि यह राजकुमार तो सर्वांग निर्दोष ही हैं—ऐसा सामुद्रिक शास्त्र में आता है; किंतु सगर के मंत्रियों ने कपट-पूर्वक झूठा सामुद्रिक शास्त्र बनाया और राजकन्या ने इनसे विवाह नहीं किया। इसप्रकार सगर के मंत्री का कपट जानकर (पर में इष्ट-अनिष्टपने की दृष्टि होने से) क्रोध द्वारा निदान किया कि—मेरे तप का ऐसा फल हो कि—'जन्म जन्मान्तर में सगर के कुल को निर्मूल करूँ।' तत्पश्चात् मधुपिंगल मरकर महाकालासुर नामक असुरदेव हुआ।

वहाँ पूर्वभव का बैर स्मरण करके सगर को मंत्री सहित मारने का उपाय ढूँढ़ने लगा और क्षीरकदम्ब ब्राह्मण का पुत्र-जो महा पापी था उससे मिला (जिसने वाद विवाद में ब्रीहि अर्थात् पुराने चावल—ऐसा अर्थ करने के बदले ब्रीहि अर्थात् बकरे—ऐसा अर्थ करके, उन्हें यज्ञ में होमना चाहिये, इस प्रकार हिंसा की पुष्टि की थी) और पशुओं की हिंसारूप यज्ञ में सहायक होने

को कहा। उसने सगर राजा को यज्ञ का उपदेश देकर कहा कि—यज्ञ करा, मैं तेरे यज्ञ का सहायी बनूँगा। फिर सगर राजा से यज्ञ करवाया और पशुओं को होमा, जिसके पापस्वरूप राजा सगर सातवें नरक में गया और कालासुर ने सहायक बनकर यज्ञकर्ता को स्वर्ग जाते हुए दिखाया। —इसप्रकार मधुपिंगल ने द्रव्यमुनि होकर विपरीत मान्यतावश निदान करके महापापों का उपार्जन किया। आचार्यदेव कहते हैं कि—पर में कर्तृत्व—इष्ट-अनिष्टपना तथा संयोग से भला—बुरा माननेवाला त्यागी या मुनि हो, तब भी उसके भव बिगड़ते हैं और वह सिद्धि को प्राप्त नहीं होता।

संतों की वाणी

(१) सम्यग्दर्शन में आत्मशांति का वेदन है। जहाँ सम्यग्दर्शन हो, वहाँ शांति होती ही है; जहाँ शांति हो, वहाँ सम्यग्दर्शन होता ही है। सम्यग्दर्शन हो और शांति का वेदन न हो—ऐसा नहीं हो सकता; तथा सम्यग्दर्शन के बिना भी किसी को शांति का वेदन नहीं हो सकता।

(२) हे जीव! जिनमें से सम्यग्दर्शन प्रगट हो, परम आनन्द प्रगट हो तथा सिद्धपद प्रगट हो—ऐसे अचिंत्य चैतन्यनिधान तेरे त्वभाव में ही भरे हुए हैं; उसमें अंतर्मुख होकर ढूँढ़.... बाह्य में ढूँढ़ने से उनकी प्राप्ति नहीं होगी।

(३) जिसमें से सिद्धपद प्रगट होता है, ऐसा परम पारिणामिकस्वभावी आत्मा कहाँ रहता है?—अपने सहज ज्ञानरूपी किले में उसका निवास है; उस सहज ज्ञानरूपी किले में मोह का उपद्रव नहीं है, कोई विघ्न नहीं है। अंतर्दृष्टिरूपी द्वार से उस सहजज्ञान किले में प्रवेश करने पर सर्व आत्मप्रदेशों में चिदानन्द से परिपूर्ण आत्मा का दर्शन होता है... चैतन्य भगवान की भेंट होती है... और फिर वह जीव स्वयं परमात्मा हो जाता है।

(४) चैतन्यस्वभावी परमतत्त्व में प्रवेश करनेवाले को चार गति में पुनरागमन नहीं रहता, क्योंकि चैतन्यस्वभावी परमतत्त्व स्वयं चार गति से रहित है।

(५) श्री आचार्यदेव करुणापूर्वक कहते हैं कि अरे जीव! रागादि भाव तो तेरे लिये अपद

है... अपद है... उसे तू अपना पद न मान... तेरा पद तो शुद्ध चैतन्यमय है, उसे देख! तेरा शुद्ध चैतन्यपद तुझमें ही है, तथापि अंध होकर तू उसे नहीं देखता और राग में ही अपना पद मान रहा है... उस अंध मान्यता को अब छोड़ दे और ज्ञानचक्षु खोलकर अपने शुद्ध चैतन्यपद को देख... उसे देखते ही तू आनन्दित हो उठेगा।

(६) अंध प्राणियों को दृष्टि प्रदान करने के लिये संत करुणापूर्वक कहते हैं कि अरे प्राणियों! तुम अपने शुद्ध चैतन्यपद को देखो... इधर आओ रे... इधर आओ! अनादि से राग की ओर जाते हुए तथा राग में ही सोते हुए जीवों को जगाकर आचार्यदेव विमुख करते हैं कि अरे जीवों! राग की ओर के वेग से अब विमुख होओ! और इस शुद्ध चैतन्य की ओर देखो... तुम्हारा यह चैतन्य पद परम आनन्दरस से भरपूर है।

(७) जिसप्रकार राजा का स्थान स्वर्ण सिंहासन पर होता है, धूल में नहीं होता; उसीप्रकार हे भाई! तू चैतन्य राजा है! तेरा स्थान तो शुद्ध चैतन्य-सिंहासन पर है, विकार में तेरा स्थान नहीं है, इसलिये तू जाग... जागृत होकर अपने निजपद को देख...!

(८) धर्म में बुद्धिमान उसे कहते हैं जो अपने स्वभाव का ही आश्रय लेकर मुक्ति की साधना करता है। जो जीव ऐसा नहीं करता और पराश्रय से लाभ मानकर संसार में भटकता है, वह भले ही चाहे जितना पढ़ा-लिखा हो, तथापि बुद्धिमान पुरुष उसे बुद्धिमान नहीं कहते, क्योंकि उसमें धर्मबुद्धि प्रगट नहीं हुई है; धर्म की रीति ही वह नहीं जानता।

(९) धर्म की अर्थात् मोक्ष की रीति यह है कि—सदैव मुक्त ऐसे सहज स्वभाव का आश्रय करना चाहिये। मुक्तस्वभाव के आश्रय से ही मुक्ति होती है... रागादि तो बंधभाव हैं... बंधभाव के आश्रय से बंधन होता है किंतु मुक्ति नहीं होती।

अहो! परम सत्य की ऐसी बात कानों में पड़ना भी दुर्लभ है। अनंत काल में ऐसा अमूल्य अवसर प्राप्त हुआ है, उस समय भी यदि अपूर्व सत्य को समझकर स्वतंत्र वस्तु स्वभाव का सामर्थ्य न समझे, यथार्थ प्रतीति और ज्ञान द्वारा अंतर्मुख होने का अभ्यास न करे तो चौरासी के अवतार के फेरे दूर नहीं होंगे। इसलिये जो जीव अब इस भवभ्रमण से थकान और महान दुःख को समझकर छूटना चाहे तो उसे अंतर से यह बात समझने योग्य है, सुगम है। पर को अपना बनाना; शरीर को ठीक रखना, यह अभिप्राय अनादि से मोहवश कर रहा है किन्तु इसमें सफल होना अवयव है—उपरांत दुःख का मूल है। [समयसार प्रवचन से]

गुरुदेव का ज्ञानमंत्र

आध्यात्मिक कवि श्री दीपचंदजी 'ज्ञानदर्पण' के निम्नोक्त दो सवैयों द्वारा शुभाशुभ से भिन्न ज्ञान-चेतना का स्वरूप बतलाकर कहते हैं कि—गुरुदेव के दिये हुए ऐसे ज्ञानमंत्र को ध्यान से दु:ख दूर हो जाते हैं:—

एक वनमाहिं जैसे रहतु पिशाची दोइ,
एक नर ताको तहाँ अति दु:ख द्यावे है;
एक वृद्ध विकराल भाव धरी त्रास करे,
एक महा सुन्दर सुभाव कों लिखावे है।
देखि विकराल ताको मनमाहिं भय मानें,
सुन्दर को देखि ताके पीछे दोरि धावे है,
ऐसो खेदखिन्न देखी काहू जन मंत्र दियो,
ताको उर आनि वो नि:शंक सुख पावे है।
तैसें याही भव जामें संपत्ति-विपत्ति दोउ,
महा सुख-दु:खरूप जनको करतु हैं;
गुरुदेवे दीयो ज्ञानमंत्र जब जब ध्याये,
तब न सताव दोउ दु:ख को हरतु है।
करिके विचार उर आनिये अनूप भाव,
चिदानन्द दरसाव भाव को धरतु है;
सुधापान कीये और स्वाद को न चाखे कोउ,
कीये सुध रीति सुध कारज सरतु ॥४८-४९॥

भावार्थ—जिसप्रकार एक वन में दो पिशाची-डाकिनें रहती हैं और वहाँ एक मनुष्य को बहुत दु:ख देती हैं। एक डाकिन वृद्ध-विकरालभाव धारण करके भयभीत करती है तथा दूसरी अत्यन्त सुन्दररूप दिखाकर उसे ललचाती है। वहाँ विकरालरूप को देखकर तो वह मनुष्य भयभीत होता है और सुन्दरता को देखकर उसके पीछे दौड़कर फँसता है।—इसप्रकार खेदखिन्न देखकर उसे किसी पुरुष ने मंत्र दिया; जिसे अंतर में धारण करने से वह नि:शंक-निर्भय होकर

सुखी हुआ। उसीप्रकार इस विकट भववन में संपत्ति और विपत्ति यह दोनों डाकिन समान सुख और दु:ख का रूप धारण करके जीव को अतिशय खेदखिन्न करती हैं।—शुभ के फलरूप अनुकूलता में सुख मानकर तो जीव उसके पीछे दौड़ता है और अशुभ के फलरूप प्रतिकूलता से अत्यन्त भयभीत होकर डरता है;—इसप्रकार वह महान दु:खी होता है। वहाँ गुरुदेव ने करुणा करके उसे शुद्धचेतनारूप ज्ञानमंत्र दिया। गुरुदेव के दिये हुए ज्ञानमंत्र को जब वह ध्याता है, तब संपत्ति-विपत्ति उसे त्रास नहीं दे पातीं और उसका दु:ख दूर हो जाता है।—इसप्रकार विचार करके, चिदानंदस्वभावरूप ज्ञानमंत्र को धारण करो तथा उसके अनुपम भाव को अपने अंतर में प्रगट करो। उस ज्ञानमंत्र द्वारा शुद्ध चेतना का सुधापान करने के पश्चात् जीव अन्य कोई स्वाद नहीं लेता, चैतन्य रस के स्वाद के समक्ष जगत के अन्य समस्त स्वाद उसे नीरस लगते हैं। शुद्ध चेतना भावरूप यह रीति अंगीकार करने से जीव का शुद्ध कार्य सरता है।

एक ही मार्ग

मोक्ष का पारमार्थिक पंथ क्या है ?

अरिहंत भगवान समान अपने शुद्धात्मा के ज्ञान द्वारा मिथ्यात्व का क्षय करके फिर उसी में एकाग्रतारूप शुद्धोपयोग द्वारा राग-द्वेष-मोह का अत्यंत क्षय करना ही मोक्ष का मार्ग है। यही एक मोक्ष का मार्ग तीर्थंकर भगवंतों ने स्वयं अनुभव करके भव्यजीवों के लिये दर्शाया है।

कैसा है मोक्षमार्ग ?

मोक्षमार्ग 'अद्वैत' अर्थात् एक ही प्रकार का है; उसमें दूसरा प्रकार नहीं है। जो अनंत तीर्थंकर हुए, वे सब इस एक ही प्रकार से मोक्षमार्ग का सेवन करके, तथा एक ही प्रकार से मोक्षमार्ग का उपदेश देकर मोक्षधाम में पहुँचे हैं। इस काल के या भविष्य काल के मुमुक्षुओं को यह एक ही मार्ग भगवान ने बतलाया है।

शुद्धोपयोग ही मोक्षमार्ग है; किंतु शुभराग भी मोक्षमार्ग है—ऐसा नहीं है। बस, एक ही

मोक्षमार्ग है। शुभराग व्यवहार से तो मोक्षमार्ग है या नहीं ?—कदापि नहीं; मोक्षमार्ग में दूसरे प्रकार का तो अभाव है; मोक्षमार्ग एक ही है। तीनों काल कें लिये तथा सर्व मुमुक्षुओं के लिये सर्व तीर्थंकर भगवंतों ने इस एक ही मोक्षमार्ग का उपदेश दिया है।

अहा, देखो नि:शंकता! आचार्यदेव अपने अभिप्राय की नि:शंकता के साथ तीन काल के तीर्थंकरों का मेल करते हैं।—इतना अभिप्राय का त्रैकालिक बल है।

क्या आपने अनंत काल के तीर्थंकरों को जान लिया ?

—हाँ; वर्तमान सम्यक् अभिप्राय के बल से तीन काल के तीर्थंकरों का निर्णय हो गया है। स्वानुभव के बल से कहते हैं कि—पूर्व काल में अनंत तीर्थंकरों ने जो मार्ग साधा है तथा जिसका उपदेश दिया है, वही मार्ग और उपदेश इस पंचम काल में भी चल रहा है।

तत्पश्चात्, १९९ वीं गाथा में आचार्यदेव कहते हैं कि—जिन, जिनेन्द्र और श्रमण (अर्थात् केवली भगवंत, तीर्थंकर और मुनि) इसीप्रकार अर्थात् शुद्धात्मा में प्रवृत्ति द्वारा ही मार्ग में आरूढ़ होकर सिद्ध हुए हैं; परंतु ऐसा नहीं है कि अन्य प्रकार से भी हुए हों। इसलिये निर्णय होता है कि यह एक ही मोक्ष का मार्ग है—दूसरा नहीं है। अहो, अभेद नमस्कार हो शुद्धात्मा में प्रवर्तमान उन सिद्धों को और उनके द्वारा सेवित मोक्षमार्ग को! हमने भी वह मोक्षमार्ग धारण किया है और उस मोक्षमार्ग को साधने का कृत्य कर रहे हैं। हे तीर्थंकरों! आपके द्वारा सेवित मार्ग की साधना करता हुआ मैं भी आपके पथ पर चला आ रहा हूँ।

अहो, ऐसे स्वाश्रित मोक्षमार्ग का उपदेश देनेवाले तीर्थंकरों को—संतों को नमस्कार हो!

नया प्रकाशन

सन्मति संदेश विशेषांक

पूज्य परम उपकारी सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी की ७३ वीं जन्म जयंती पर दिल्ली से सन्मति संदेश कार्यालय की ओर से खास भक्तिवश और धर्म प्रभावना के लिये विशेषांक प्रगट किया है, जिसमें १०० पृष्ठ उपरान्त आर्ट पेपर ऊपर १८ सुन्दर चित्र, तीर्थक्षेत्र के चित्र तथा पू० गुरुदेव श्री कानजी स्वामी द्वारा जो महान धर्म प्रभावना हो रही है, उसका वर्णन, विद्वानों द्वारा स्वामीजी का परिचय तथा संक्षेप में जीवन चरित्र, श्री कुन्दकुन्दाचार्य-पद्मनन्दीनाथ-विदेहक्षेत्र में गये थे, आकाशगमन शक्ति सम्पन्न ऋद्धिधारक थे, उसके आधारभूत अनेक प्राचीन शिलालेख सहित ऐतिहासिक खोज पूर्ण सामग्री दर्शक लेख, आदि खास महत्वपूर्ण लेखों का संग्रह है। जो खास विद्वानों, कवियों और लेखकों के द्वारा लिखे हुये हैं, हरेक जिज्ञासु को अवश्य पढ़ने योग्य है, मूल्य दो रुपया होने पर भी एक धर्म प्रेमी भाई द्वारा प्रचारार्थ एक रुपया में मिलेंगे, (पोस्टेज अलग)

श्री दि० जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

खास सूचना

सोनगढ़ में जो दि० जैन शिक्षणवर्ग ता० ५-८-६२ से २४-८-६२ तक चलेगा। उसमें लाभ लेने के इच्छुक धर्मजिज्ञासु जैन भाइयों को एक बार का (एक तरफ का रेल किराया) एक धर्म प्रेमी उदार भाई की ओर से देने की भावना है, इसलिये उसका लाभ लेने के इच्छुक प्रथम से संस्था को पत्र लिखकर सूचित करें, ताकि इस संबंध में निर्णय कर सके।

एक साल के लिये 'आत्मधर्म' भेंट स्वरूप मिलेंगे

सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वार्थों का स्वरूप आत्महित के लिये समझना आवश्यक है। आत्मज्ञानी सत्पुरुष का प्रत्यक्ष समागम किये बिना पढ़ने मात्र से अपूर्व वस्तु स्वरूप समझ में नहीं आता, किंतु जो धर्म जिज्ञासु प्रत्यक्ष लाभ न ले सके उनको सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक प्रवचनों के लाभ प्राप्त हो सके, इसलिये एक ऐसी योजना की गई है कि—जिस गाँव में जिनमंदिर-स्वाध्याय शाला हो और जहाँ धर्म जिज्ञासुओं एकत्र होकर 'आत्मधर्म' मासिक पत्र पढ़ने का इच्छुक हो, वहाँ आत्मधर्म हिन्दी एक साल के लिये, वैशाखमास से आगामी चैत्रमास तक भेंटस्वरूप (बिना मूल्य) भेजा जायेगा। इस योजना द्वारा जो आत्मधर्म भेजा जायेगा, उसका सब खर्च एक धर्म प्रेमी भाई की ओर से होगा।

जो लाभ लेना चाहते हैं, वह अपनी संस्था के प्रमुख या मंत्री की सही के साथ पत्र लिखने का कष्ट करें।

मिलने का पता:—
श्री आत्मधर्म प्रचार विभाग
श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

आवश्यकता हो वे सूचित करें

अष्टाह्निका पर्व और दशलक्षणी पर्व के दिनों में जो मुमुक्षु मंडल को प्रवचनकार विद्वान की आवश्यकता हो, वे तुरन्त सूचित करें।

(१) पता:— **प्रचार विभाग श्री दि० जैन मुमुक्षु महामंडल**
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

(२) पता:— **श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट**
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

(नया प्रकाशन)

अपूर्व अवसर

श्री राजचन्द्रजी कृत एक महान अमर काव्य। इस पर पूज्य कानजी स्वामी के प्रवचन गुजराती भाषा में तीन बार छप चुके हैं। धर्म जिज्ञासुओं की उस रचना को पढ़ने की भारी माँग होने से उसका हिन्दी अनुवाद भी छपकर तैयार हो गया है। साथ में भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत द्वादशानुप्रेक्षा तथा लघु सामायिक पाठ भी है। पृष्ठ संख्या १५० सजिल्द, मूल्य लागत से भी कम, ८५ नये पैसे मात्र। पोस्टेज अलग।

जिसको शास्त्र ज्ञान में ज्यादा अच्छा अभ्यास नहीं है, उसको भी सरलता से अच्छा ज्ञान मिलेगा। २१००, बुक छपी थी। ११००, के प्रथम से ही ग्राहक थे। इच्छुक हों, वे शीघ्र मंगवा लेवें।

जैन दर्शन शिक्षण वर्ग

इस साल जैन भाइयों के लिए ता० ५-८-६२ से ता० २४-८-६२ तक (जो हर साल श्रावण मास में चलता है) जैनदर्शन शिक्षण वर्ग चलेगा। उसका लाभ लेने के इच्छुक जिज्ञासुओं को सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी द्वारा दि० जैन धर्म के मूल सिद्धांतों के रहस्यमय प्रवचनों का भी लाभ मिलेगा। आनेवाले जिज्ञासुओं के ठहरने, जीमने की व्यवस्था संस्था की ओर से होगी। जिनकी आने की भावना हो, वे पहले से ही सूचित करें।

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

पंचास्तिकाय	४ ॥)	ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	२ ॥)
नियमसार	५ ॥)	मोक्षशास्त्र बड़ी टीका सजिल्द	५)
समयसार पृष्ठ ६१६ बड़ा साइज	५)	सम्यग्दर्शन (तीसरी आवृत्ति)	१.८५)
मूल में भूल (नई आवृत्ति)	।।।)	छहढाला (नई टीका)	॥ ।–)
श्री मुक्तिमार्ग	॥=)	जैन तीर्थ पूजा पाठ संग्रह	
श्री अनुभवप्रकाश	॥)	कपड़े की जिल्द	१ ।=)
श्री पंचमेरु आदि पूजासंग्रह	।।।)	अपूर्व अवसर	८५ न.पै.
समयसार प्रवचन भाग १	४ ॥।)	भेदविज्ञानसार	२)
समयसार प्रवचन भाग २	५ ॥)	अध्यात्मपाठसंग्रह	५)
समयसार प्रवचन भाग ३	४ ॥)	समाधितंत्र	२ ।=)
प्रवचनसार	५)	निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	=)
अष्टपाहुड़	३)	स्तोत्रत्रयी	॥)
मोक्षमार्ग–प्रकाशक की किरणें प्र०	१ ।=)	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	=)
द्वितीय भाग	२)	'आत्मधर्म मासिक' लवाजम–	३)
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र०	॥–)	आत्मधर्म फाइलें १–३–५–६–	
द्वितीय भाग	॥–)	७–८–१०–११–१२–१३ वर्ष	३ ।।।)
तृतीय भाग	॥–)	शासन प्रभाव	=)
जैन बालपोथी	।)		

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—
श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।